A Pratibha Spandan's Journal

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

प्राचीन भारतीय संगीत शिक्षा पद्धति

Sonali Keshari[1], Prof. Sangeeta Singh[2]

1 Research Scholar, Instrumental Department, Faculty of Music and Performing Arts, Banaras Hindu University,
2 Research Director, Instrumental Department, Faculty of Music and Performing Arts, Banaras Hindu University

OPEN ACCESS

सार

भारतीय संगीत शिक्षा की परम्परा अत्यन्त प्राचीन एवं समृद्ध है। वैदिक काल में संगीत के तीनों विधाओं गायन, वादन व नृत्य का वर्णन है। वैदिक काल में सामगानों से लेकर ब्राह्मण ग्रन्थ, आरण्यक, उपनिषद, पुराण, महाकाव्यों में संगीत का विस्तृत रूप से विकास हुआ। शिक्षा गुरु के द्वारा दी जाती थी। संगीत की शिक्षण परम्परा अत्यन्त प्राचीन थी, जिसे गुरुकुल पद्धति कहा जाता था। गुरु के बिना शिष्य की शिक्षा अपूर्ण मानी जाती थी। गुरु ही शिष्य के ज्ञान पिपासा को दूर करते थे। शिक्षा एक सर्वोत्तम उपकरण है।

"शिक्ष्यते उपदिश्यते यत्र सा शिक्षा।।"नीतिशास्त्र

अर्थात् जिस माध्यम अथवा प्रणाली द्वारा शिक्षा दी जाती है, उसे ही शिक्षा कहते है। शिक्षा से मनुष्य के चरित्र का निर्माण, व्यक्तित्व का निर्माण, ज्ञान प्राप्ति के लिए, सामाजिक तथा सांस्कृतिक, आध्यात्मिक रूप से उसका विकास होता है। भारतीय संगीत शिक्षा परम्परा प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल में संस्थागत शिक्षण प्रणाली के स्वरूप में चली आ रही है।

मूल शब्द - *संगीत, गुरु, शिक्षा, गुरुकुल।*

परिचय

भारतीय संगीत शिक्षा अत्यधिक प्राचीन काल से चली आ रही है। भारतीय संगीत का विकास अन्य कलाओं की तरह धीरे-धीरे प्रारम्भ हुआ । संगीत को धर्म तथा अध्यात्म से भी जोड़ा गया है। शताब्दी पूर्व से ही संगीत की शिक्षा गुरु-शिष्य परम्परा अनवरत चली आ रही है। प्राचीन काल में शिक्षा गुरुकुल में हुआ करती थी। संगीत की शिक्षा तीनों विधाओं के रूप में विद्यमान थी, जो शिष्यों को गुरू द्वारा दी जाती थी। प्राचीन काल में संगीत शिक्षा गुरु पर आश्रित थी। शिष्य, गुरु का सम्मानपूर्वक आदर कर चुनौती पूर्ण परिश्रम, धैर्य व श्रध्दा के साथ अभ्यास करते हुए, गुरु के गायन व वादन को आत्मसात करते थे। वैदिक काल में गुरुकुल शिक्षा की एक विशेषता थी, कि गुरु बिना आत्म निरीक्षण द्वारा शिक्षा नहीं देते थे। तभी वेदों में कहा गया है, कि गुरू सर्वश्रेष्ठ है_

"गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देवो महेश्वरः

गुरुः साक्षात्परब्रह्मा तस्मै श्री गुरुवे नमः"॥ स्कंदपुराण, (गुरु गीता)

अर्थात् गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही भगवान शंकर हैं, और गुरु ही साक्षत् परब्रह्म हैं, मैं ऐसे गुरु को नमस्कार करता हूं।

शिक्षा शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा 'एजुकेयर' शब्द से हुई है, जिसका अर्थ है, विकास करना या पालन-पोषण करना। शिक्षा शब्द 'शास' धातु से बना है, जिसका अर्थ है -निर्देश देना,आज्ञा देना व शिक्षा देना कुछ अन्य लोगों के अनुसार शिक्षा का अर्थ है, कि शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति में अच्छे गुणों को विकसित करने और सर्वोत्तम को बाहर लाने का प्रयास करती है। शिक्षा मनुष्य की जन्मजात अथवा आंतरिक क्षमताओं का विकास करती है। शिक्षा एक ऐसी पद्धति है जो केवल मनुष्य में ही विद्यमान होती है। शिक्षा से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास उसके मानसिक, शारीरिक, बौद्धिक, चारित्रिक, नैतिक, भावनात्मक व आत्मिक विकास ही शिक्षा का मुख्य उद्देश्य रहा है।

"सा विद्या सा विमुक्तये ।।" विष्णुपुराण

अर्थात् विद्या मोक्ष का साधन है। विद्या द्वारा परिष्कृत और विकसित की गयी एकमात्र बुध्दि ही वास्तविक शक्ति है। संगीत के प्रायोगिक पक्ष के साथ ही साथ शास्त्रात्मक पर भी ध्यान दिया जाता था। गुरु द्वारा शिक्षा उनके शिष्यों को चरित्र निर्माण के लिए ही जाती थी। हमें तीनों विद्याओं का विकास वैदिक काल से प्राप्त होता है। वैदिक काल में शिक्षा आश्रमों में ब्राह्मण तथा क्षत्रिय द्वारा दी जाती थी। वैदिक काल में ऋषि के आश्रम को 'अरण्य' कहा जाता था। ऋषि के आश्रम को ही शिक्षा का केन्द्र माना जाता था। प्राचीन काल में शिष्यों के चारित्रिक, व्यवहारिक और सांस्कृतिक विकास पर मुख्य रूप से ध्यान दिया जाता था, जिससे शिष्य में सेवा, भावना, त्याग, साधना, तपस्या के गुण हो । प्राचीन काल में जिस प्रकार दर्शन, अध्यात्म, मनोविज्ञान, साहित्य, वेदों की शिक्षा मुखस्थ दी जाती थी, उसी प्रकार संगीत की शिक्षा मौखिक तथा प्रदर्शनात्मक रूप से शिष्य

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

को दी जाती थी। शिष्य गुरु के सानिध्य बैठकर उनके सापेक्ष उनसे शिक्षा प्राप्त करते तथा गुरु शिष्य की चेष्ठा, प्रतिभा, धैर्य, ब्रह्मचर्य तथा गुरुसेवा से सन्तुष्ट होकर शिष्य को उपयुक्त शिक्षा दिया करते थे। प्राचीन काल में संगीत की शिक्षा का अर्थ केवल स्वर व ताल युक्त या रागों को सिखाना ही मात्र नहीं था, वरन् विस्तृत रूप से संगीत के साधना पक्ष में विद्यार्थी की आस्था व लगन को उपन्न करके, संगीत के प्रयोगात्मक पक्ष ग्रहण करते हुए लालित्य एवं रस तत्व के प्रति जागरूक रखना तथा संगीत के प्रगति के लिए प्रयत्नशील करना था। पुराणों के अनुसार साम शाखाओं के प्रवर्तक मुनि वेद व्यास को माना जाता है, जिन्होंने अपने चार शिष्यों को साम संहिताओं की शिक्षा दी, जिसमें जैमिनी को साम संहिता की शिक्षा प्रदान की। जैमिनी ने अपने पुत्र सुमन्तु, सुमन्तु ने अपने पुत्र सुन्वानु को तथा सुन्वानु ने अपने पुत्र सुकर्मा को सामगान की शिक्षा दी तत्पश्चात् सुकर्मा से सामगान की शिक्षा प्रारम्भ हुई। वैदिक काल में आध्यात्मिक संगीत को 'मार्ग' तथा लोक संगीत को 'देशी' का कहा जाता था। ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है। वैदिक साहित्य में सामगायन की शिक्षा प्रारम्भ हुई, जिसमें तीन गायक प्रस्तोता, उद्गाता, प्रतिहर्ता मिलकर गान प्रस्तुत करते थे। वैदिक साहित्य में साम प्रशिक्षण के तीन रूप प्रचलित थे_

1) पिता-पुत्र के रूप में।

2) गुरु शिष्य परम्परा के रूप में।

3) गुरुकुल में जाकर शिक्षा ग्रहण करना।

वैदिक काल में संगीत की शिक्षा गन्धर्व द्वारा दी जाती थी। उस समय संगीत को व्यवसाय के रूप में निषेध माना जाता था। वैदिक काल में सामगान से गान्धर्व संगीत का विकास हुआ। धार्मिक अनुष्ठानों में संगीत का प्रयोग करते थे सामगान तथा लौकिक आयोजनों में संगीत होने वाले संगीत को 'गांधर्व गान' कहते थे। वैदिक काल में शिष्य की शिक्षा समाप्ति के बाद कोई भी आर्थिक शुल्क लेने की व्यवस्था नहीं थी, किन्तु शिष्य अपने इच्छानुसार गुरू दक्षिणा देते थे। संगीत की प्रयोगात्मक तथा शास्त्रात्मक पक्ष दोनों की शिक्षा मूल रूप से दी जाती थी। ऐतिहासिक युग में वैदिक शाखा, ब्राह्मण ग्रन्थों, आरण्यकों, उपनिषदों इत्यादि में संगीत का अध्ययन -अध्यापन गुरुकुल में होता था। वर्णोच्चारण व स्वरोच्चारण का संगीत तथा साहित्य में सार्थक स्थान था तथा श्रेष्ठ शिक्षा अर्जित करने के लिए बुध्दि ही आधार मानी गयी है। वैदिक काल के बाद मुख्य रूप से महाकाव्यों में संगीत की शिक्षा का उल्लेख प्राप्त होता है। पाणिनी के ग्रन्थों में यज्ञ व अनुष्ठान में होने वाले मंत्रों के उच्चारण विधि को भी बताया गया। इस समय संगीत पर पूर्ण रूप से ब्राह्मणों का अधिकार था, और उस समय ब्राह्मण संगीत के ज्ञाता एवं संगीत के विद्वान कहे जाते थे। इस कारण उस काल में सभी ग्रन्थ संस्कृत भाषा में लिखे गये। अष्टाध्यायी रचित "पाणिनी" में संगीत की पवित्रता और धार्मिकता उच्च कोटि की थी। पुरुष और नारी दोनों ही संगीत की शिक्षा ग्रहण करते थे। इस काल में वाद्य-वृंद का भी उल्लेख है, जिसे 'तूर्य' की संज्ञा दी गयी थी। रामायण काल में महर्षि वाल्मीकि ने श्री रामचन्द्र के पुत्र लव व कुश को विभिन्न प्रकार के कलाओं के साथ संगीत कला को भी सिखाया। रामायण काल में वाद्य तथा नृत्य की भी शिक्षा दी जाती थी। रामायण तथा महाभारत काल में राज-दरबारों में संगीत प्रस्तुत करने का प्रचलन था तथा राजाओं ने नर्तनागार एवं संगीत शालाएं बनवा रखी थी, जिसमें आचार्यों द्वारा बालिकाओं,रानियों तथा राज्य की स्त्रियों को नृत्य तथा गीत की शिक्षा दी जाती थी। कुशल नृत्य तथा गीत आदि श्रेष्ठ गन्धर्व कहलाते थे, ये गन्धर्व संगीताचार्य होते थे। इनके द्वारा संगीत की शिक्षा प्रदान की जाती थी। महाभारत काल में अर्जुन बृहन्नला का रूप धारण कर विराट की राजकन्या उत्तरा को गीत, वाद्य तथा नृत्य की शिक्षा दी। गन्धर्व चित्रसेन नृत्य व गायन के आचार्य थे, जिसने अर्जुन ने संगीत की शिक्षा प्राप्त की। प्रातिशाख्य और शिक्षा काल में संगीत की उन्नति हो गई। प्रातिशाख्य और शिक्षा ग्रंथो में मंद्र, मध्य और तार स्वरो का उल्लेख प्राप्त है। संगीत शालाओं में प्रयोग पक्ष के साथ शास्त्र पक्ष स्वर, जाति, राग, ताल, वस्तु तथा अभिनय इत्यादि की भी विधिवत् शिक्षा ही जाती थी। जैन युग में यह उल्लेख प्राप्त होता है, कि संगीत सीखने के लिये कुछ सिद्धान्त रखे गये थे, जैसे- अपने इन्द्रियों को वश में रखो, लालच मत करो, मधुर व शुद्ध वचन बोलो, जीवन में बुराइयों से दूर रहो, जीव-जन्तुओं को मत मारो, किसी से ईर्ष्या या द्वेष भी भावना मत रखो इत्यादि। महावीर स्वामी ने इस सभी सिद्धान्तों पर विशिष्ट रूप से ध्यान दिया। उनका कहना था, कि जो व्यक्ति हिंसा करते हैं, वे लोग संगीत जैसे पवित्र कला की साधना नहीं कर सकते।

वैदिक काल से बौद्ध काल तक आते - आते संगीत का विस्तृत रूप से विकास हो गया था। बौध्द काल में नालन्दा, तक्षशिला तथा विक्रमशिला विश्वविद्यालयों का उल्लेख प्राप्त होता है, जिसे शिक्षा का प्रमुख केन्द्र मानते है। बौध्द काल ऐसा उल्लेख प्राप्त होता है, कि कुमार दीर्घायु अपने गुरु महावत से कहते है, कि आचार्य मैं आपसे सभी शिल्प सीखूँगा। तक्षशिला के वैदिक व अष्टादश विद्यालयों में पांच-पांच सौ विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे। उस समय वाराणसी (काशी) विद्या का दूसरा केन्द्र था, जिसमें संगीताध्यापन का स्वतन्त्र विभाग था। उस काल में संगीत की शिक्षा

SWAR SINDHU
(National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music)
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 13, Issue 01, January-June, 2025
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2025

विधिवत उच्च वर्ग के विद्यार्थियों को दिया जाता था। गुप्त काल में शास्त्रीय संगीत के साथ लौकिक संगीत का भी प्रचार-प्रसार था। राज्य गीतों की स्त्रियों को उत्सवों, होने वाले गीतों का अभ्यास तथा नवीन को सीखने का अवसर प्रदान किया जाता था। जनपद के काल में वत्सराज उदयन नामक संगीतज्ञ का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने उज्जैन के महाराजा चण्डमहासेन की पुत्री वासवदत्ता को संगीत की प्रशिक्षा दी। शब्द विद्या, अध्यात्म विद्या, चिकित्सा विद्या, हेतु विद्या और शिल्प विद्या नामक वैदिक पंच महाविद्या जातक युग में 'पंचायन' कहलाती थी।

कौटिल्य के अर्थशास्त्र में अन्य कला के अतिरिक्त गीत, वाद्य, नृत्य, वेणु तथा मृदंग की शिक्षा सम्मिलित थी। संस्थानों में गणिकाओं के अतिरिक्त उनके वंशज तथा संगीत का व्यवसाय करने के पुत्रों तथा गणकों आदि वर्गों को संगीत की उच्च शिक्षा प्रदान की जाने लगी वात्स्यायन के कामसूत्र में संगीत की शिक्षा संगीत शालाओं में हुआ करती थी । भास तथा शुद्रक के नाटकों में राजा 'अज' संगीत की शिक्षा अपनी पत्नी इंदुमती को देते थे। हरदत, गणदास तथा रेमिल नामक गायक आचार्या को गुरु शिष्य परम्परा का संकेत समझा जाता था। संगीत के शिक्षकों को 'सुतीर्थ' कहते थे। संगीतशालाओं में प्रतिदिन कक्षाएँ चलती थी। इस काल में संगीत शिक्षा ग्रहण करने वाली कुछ स्त्रियों के नाम मिलते हैं, जैसे - शर्मिष्ठा, मालविका, एवं परिवाज्रिका आदि। शर्मिष्ठा संगीत कला में अत्यन्त निपुण थी। शर्मिष्ठा का प्रदर्शन नृत्य प्रदर्शन छलिक' नामक प्रसंग में देखने को मिलता है। इस काल तक संगीत के सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक दोनों ही पक्ष पूर्ण रूप से विकसित हो गए। संगीत को उच्च दृष्टि से देखा जाने लगा। संगीत का स्थान उत्तम व महत्वपूर्ण था। भास के नाटकों, मृच्छकटिक नाटक व हर्षचरित में राजमहलों के अन्तर्गत संगीत गृह का विवरण प्राप्त होता है। राजभवनों में संगीत शालायें होने के कारण राजा व राज्य के अन्य लोग संगीत की शिक्षा लेने लगे। इस प्रकार समय परिवर्तन होते-होते गुरुकुल परम्परा, राजभवनों के संगीतशाला अथवा संगीत गृह में परिवर्तित हो गई और संगीत व्यवसाय का रूप बन गयी।

उपसंहार

शिक्षा एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है, जिसके माध्यम से व्यक्ति का मानसिक एवं शारीरिक रूप विकास होता है। शिक्षा से समान, संस्कृति, देवेन देश-विदेश का उन्नति होता है। शिक्षा से व्यक्ति के नैतिक आचरण, आत्मचिन्तन, बौध्दिक का इत्यादि का विकास होता है। शिक्षा के हो पात्र है- गुरु तथा शिष्य, ये दोनों एक दूसरे के बिना अधूरे है। जिस प्रकार गुरू में सभी गुण विद्यमान होते है, उसी प्रकार शिष्य को शिक्षा प्राप्त करने में जिज्ञासा, उत्साह, गुरुभक्ति, निष्ठा, श्रवण, ग्रहण धारण करने की क्षमता होनी चाहिए वैदिक माल सभी शिल्प कला के साथ संगीत कला की शिक्षा देते थे। पाँचों ललित कलाओं में संगीत अत्यन्त सूक्ष्म व सर्वश्रेष्ठ माना गया है। संगीत सुनने मात्र से ही मन व चित्त की शक्ति मिलती है। संगीत की शिक्षा गुरु शिष्य द्वारा होती थी। संगीत शिक्षा सभी को सीखना चाहिए, क्योंकि संगीत से भावनाओं को समझा समहाने की शक्ति मिलती है, और बुध्दि को बढ़ावा मिलता है। संगीत शिक्षा से व्यक्ति के संज्ञानात्मक, भावनात्मक विकास को बढ़ाकर उनके जीवन को संपन्नता पूर्ण बनाता है। प्राचीन काल से गुरु-शिष्य परम्परा चली आ रही है। गुरु ना हो, तो शिक्षा प्राप्त करना दुसाध्य हो जाता । वैदिक काल के सामगान, उनके स्वरों उदात्त, अनुदात्त, स्वरित का विकास हुआ, गुरुकुल की आश्रम परम्परा बाद में संगीतशालाओं तथा नर्तनागार में परिवर्तित हो गये । एक शिक्षित मनुष्य ही अपने आत्मिक प्रवृत्तियों का निर्माण व सृजनकर्ता होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1) डा० मधुबाला सक्सेना, भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली एवं उसका वर्तमान स्तर (1990) पृष्ठ सं० - 46,47,49
2) डा० अमरेशचौबे, संगीत की संस्थागत शिक्षण-प्रणाली (1988) पृष्ठ सं. - 18-19
3) अशोक कुमार रमन, संगीत रत्नावली पृष्ठ सं०- 60-61, 93
4) प्रो. स्वतन्त्र शर्मा, भारतीय संगीत : एक ऐतिहासिक विश्लेषण (2014) पृष्ठ सं. - 36,38,40